

दादू के साहित्य में साधन तत्व

डॉ.आदर्श किशोर

सह आचार्य (हिंदी)

राजकीय महाविद्यालय, बाड़मेर

“सत्य की शोध में निरन्तर दत्तचित्त रहना या सत्यसिद्धि की अवस्था में तल्लीन रहना” साधना है। सत्य के तथ्य की खोज करना, जानकारी करना और अंततोगत्वा उसे प्राप्त करना साधना का ही विषय है। अतः साध्य की प्राप्ति तक किये गये सारे प्रयत्न लक्ष्य को प्राप्त करने तक किये गये सारे प्रयास और अपने गंतव्य को प्राप्त करने तक की गयी सारी कोशिशें साधना ही के अन्तर्गत आती है। अतएव व्यक्तिमात्र के ये सारे प्रयत्न व प्रयास जो उसे निर्दिष्ट गंतव्य की प्राप्ति करने में सहायक होते हैं साधना है।”¹

वस्तुतः संतों की साधना में कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति तत्त्वों का सहज सुंदरतम समन्वय है, जिसके परिणामस्वरूप संतों की इस साधना को ‘सहज-साधना’ के नाम से अभिहित किया गया है। यह सहज-साधना या साधना-पद्धति कोई नयी नहीं है, बल्कि कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति नामक साधनाओं के सहज स्वरूपों का एक सुन्दर किन्तु स्वाभाविक समन्वयात्मक रूप मात्र है जो संतों के सहज स्वभाव, मौलिक मनन व पैनी दृष्टि का परिणाम है। इस प्रकार सहज-साधना में सहज कर्म, सहज ज्ञान, वैराग्य व त्याग एवं सहज योग, सहज भक्ति व प्रेम सहज ही समाविष्ट हो सके हैं। अतः संतों की साधना में तत्कालीन समस्त साधनाओं के सहज रूप व सार तत्त्वों ने अनायास ही मिलकर एक महत्त्वपूर्ण रूप धारण किया जिसे समस्त जन समुदाय ने सहज ही स्वीकार कर अंगीकार भी किया।

संत दादू की साधना भी, इसी प्रकार, सहज साधना ही है जिसमें सहज कर्म, सहज ज्ञान, सहज योग और सहज भक्ति के विभिन्न मूल-तत्त्वों का सहज ही समन्वय हो पाता है। आपा और मनोविकारों का परित्याग, मनः स्थिरता निर्वैरिता या समत्व-भाव, अनभै, नाम-स्मरण, सत्संग, शरणागति, सेवा-भाव, प्रेम भक्ति और एकलयता आदि दादू की इसी सहज-साधना के साधन हैं।

माया-दादू के अनुसार माया सर्पिणी, कामिनि एवं महाठगिनी है। इसकी गिरफ्त से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक नहीं बचे।

माया सर्पिणी सब डसें, कनक कामणी होई।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश लौ, दादू बचै न कोई।²

माया को मन में नहीं लगाना चाहिए। इसके आस्वादन से मन रूपी मक्खन भी पत्थर का बन जाता है। परन्तु ब्रह्मा ज्योति प्रकाश के आगे यह क्षण भर में नष्ट हो जाती है। इसलिये वह सन्तों की चेरी बनी हुई है। “दादू माया चेरी संत की।”

मन-दादू के अनुसार यह मन अत्यन्त चंचल है। इसको वश में रखना अत्यन्त दुःसाध्य है। शरीर को तो वश में किया जा सकता है पर मन को निग्रह करना अत्यन्त दुष्कर है।³ यह मन बड़े-बड़े ऋषि मुनि एवं तपस्वियों को भी पथभ्रष्ट कर देता है।⁴ दादूजी ‘काचा’ व ‘पाका’ दो रूप में मन को विभाजित करते हुए कहते हैं कि “पाका” मन निश्चल होकर निरन्तर ईश्वर चिन्तन में संलग्न रहता है जबकि “काचा” मन चारों दिशाओं में घूमता फिरता है।⁵ वे कहते हैं कि “मन पतंग की भांति आकाश में अत्यन्त चंचल गति से उड़ता है पर उनका यह भी कहना है कि यदि ईश्वरीय प्रेम के जल में भिगो दिया जाये तो इसकी उड़ान बंद हो जाती है।⁶

गुरु का महत्व – संत दादूदयाल ने गुरु को महत्व दिया है। इनके अनुसार उस निराकार एवं सर्वव्यापी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये गुरु ही मार्ग प्रदर्शक होता है और वे ही अपने ज्ञान नौका द्वारा शिष्य को भवसागर पार उतारता है।⁷

सिख गोरु गुरु ग्वाल है, राख्या करिकरि लेई।

दादू राखै जनतकरि, आणिं धणी को देई।⁸

“गुरु ग्वाल की भांति शिष्य रूपी गाय की रक्षा कर ईश्वर रूपी मालिक को सौंपता है।” कबीर की भांति ये भी गुरु पर बलिहारी जाते हैं। सतगुरु के मिलने से भक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है और सहज में ही उसके दर्शन होते हैं।

नाम स्मरण- दादू के नाम स्मरण को महत्व दिया है क्योंकि रामनाथ की समस्त सम्पत्ति का आधार है। अतः उसी से संसार को पार किया जा सकता है। दादू दयाल यह कहकर “तेरे नाऊ की बलि जाऊँ, जहाँ रहौं जिस ठाँऊ” अपने राम नाम की बलि जाते हैं। वे रामनाम

को एक औषधि मानते हैं जिससे जीव के करोड़ों विषय विकार नष्ट हो जाते हैं। इस सम्बंध में दादू कहते हैं कि :-

नांव लिया तब जाणिए, ते तन मन रहै समाइ ।

आदि अंति मधि एकरस कबहुँ भूलि न जाई ।।⁹

सत्संग :- हरि स्मरण में मन को लगाने के लिए दादू ने साधु संगति को अनिवार्य शर्त बताया कि साधु के सम्पर्क में आने पर ही हृदय में भगवान के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव होता है लेकिन साधु की संगति प्रभू की कृपा होने पर ही प्राप्त होती है।¹⁰ वे पुनः कहते हैं कि “केवल पशुओं के सत्संग में ही सच्चे प्रेम का स्वाद मिलता है यह अन्यत्र कहीं ढूँढने पर नहीं मिलता है। यदि कोई राम के मिलन के लिए उदास हो तो उन्हें उसे साधुओं के निकट खोजना चाहिए, राम उन्हीं के पास रहता है।”

साधू मिले तब ऊपजे, प्रेम भक्ति रुचि होई ।

दादू संगति साधु की, दया कर देवे सोई ।।¹¹

अन भै—अन भै साधना का सार है, साध्य की उपलब्धि का उत्तमोत्तम उपादान है और निर्दिष्ट गंतव्य की निकटतम साधना है। दादू के अनुसार “अनभै” वही है जिसकी अनुभूति होते ही साधक को साहिब की प्राप्ति होती है और मन के विकास हमेशा के लिये विनष्ट हो जाते हैं।¹²

सोई अनभै सोई ऊपजी, सोई सबद ततसार ।

सुणता ही साहिब मिलैं, मन के जाहि विकार ।।

समता, दादू “निर्वैर” प्रवृत्ति का समर्थन करते हैं और वैर—भाव का विरोध करते हैं। उनके अनुसार संत—जन वही है जो जीव मात्र से निर्वैरी रहे, सबको समत्व की दृष्टि से अभेदपूर्ण भाव से देखे और अहं भाव का परित्याग कर सारी दुविधाओं को दूर करें।

काहै को दुख दीजिए, घटि घटि आत्माराम ।

दादू सब संतोषिये, यह साधू का काम ।।

सेव्य भावना — दादू के अनुसार सच्चा साधु वही है जिसमें सेव्य भावना की प्रबलता है। इसीलिए उनकी दृष्टि में ब्रह्मा, शंकर, शेष, मुनि, नारद, ध्रुव, सुखदेव आदि सब सच्चे साधु हैं क्योंकि वे जीवन भर हरि—सेवा में लगे रहे। संत दादू इसी तरह, स्वयं को भी ‘सिरजनहार’

का सेवक ही मानते हैं। वे उस साहिब के ही बंदे हैं उनके लिये साहिब की सेवा और बंदगी के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य नहीं है।

दादू जे साहिब मानै नाहीं, तऊ न छाड़े सेव।

इहि अवलंबनि जीजिये, साहिब अलब अभेव।।

शरणागति या समर्पण—उपासना और तप की ब्रह्मा विधियों पर दादू तब तक विश्वास नहीं करते जब तक कि साधक के लक्ष्य में उपास्य का अखण्ड ध्यान न बना रहे। उनकी चेतना अनंत के प्रति शरणागति के अभाव को अपने भीतर निरन्तर प्रतिबिंबित करती रहती है।

दादू सेवग साईं बस किया, सौंप्या सब परिवार।

तब साहिब सेवा करें, सेवग के दरबार।।

भाव भक्ति एवं एकलयता—“भाव भक्ति का तात्पर्य है अनुभूतियों पर आश्रित भव्य भावनाओं के द्वारा अनंत के दिव्य भाव में दत्तचित्त हो मग्न होना—लवलीन होना, सीमित हृदय का असीम के साथ अनुराग के सहारे, एकमेव होना और अद्वैतावस्था का अनुभव कर तादात्म्य की प्राप्ति करना।¹³ दादू मानते हैं कि प्रेम—भक्ति के बिना कोई वर्ष तक जीना या अमर होना व्यर्थ है। उसे तो जीवन मानना ही अनुचित है। अतः संतों के लिये प्रेम—भक्ति ही जीवन एवं सार है।

“प्रेम भक्ति जब ऊपजे, पंगुल ज्ञान विचार।

दादू हरि रस पाइये, छूटै सकल विकास।।”

विरहानुभूति—दादूजी कहते हैं कि “विरह रूपी अग्नि में मन के सारे विकास नष्ट हो जाते हैं और बाद में वह ईश्वर के मिलन हेतु तड़प उठता है।¹⁴ वे फिर कहते हैं कि विरह सरिता की प्रेम तरंग में यह मन विषय शा रूपी पैरों से रहित होकर निश्चल हो जाता है और राम—नाम स्मरण द्वारा सब अंहकार नष्ट हो जाने पर वह क्षण भर के लिये भी स्मरण नहीं त्यागता।¹⁵ मन को विरह द्वारा उस ब्रह्मा में लगा देने से मन व तदनुगामी इन्द्रियाँ भी उसी ओर लगी रहती हैं जिससे आत्मा का उससे तदरूप हो जाना ही सहज हो जाता है।¹⁶

अहं भावना का परित्याग — दादू जितना लक्ष्य प्राप्ति का विरोध आपा अर्थात् अंहकार को समझते हैं उतना और किसी वस्तु को नहीं। इनका कथन है कि जहां अहम् विद्यमान है वहां परमात्मा नहीं है वहां परमात्मा की सत्ता है। यह दोनों एक ही जगह नहीं रह सकते हैं।

जहाँ राम तहंमै नहीं, मैं तहं नाहिं राम।

दादू महल बारीक है, दूबै को नाहिं ठाम।¹⁷

तन—मन के विकारों का परित्याग—दादू कहते हैं :—

दादू विषै विकार सौ, जब लग मन राता।

तब लग चित्त न अबई, त्रिभुवनपति दाता।¹⁸

यदि मन मैला है तो मन भी उज्ज्वल नहीं हो सकता और कोटि यत्न करने पर भी विकार दूर नहीं हो सकते।¹⁹ अतः मन के विकारों के परिहार के लिये मन की निर्मलता आवश्यक है।

संत दादू ने 'साधना' पक्ष में यम—नियमों की बहुत चर्चा की है जो कर्मयोगी को निषिद्ध कर्मों से रोकते हैं उन्हें यम कहा जाता है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य है। इनकी वाणी में यम को बहुत उच्च स्थान दिया गया है। मन वचन और कर्म से किसी प्राणी को कष्ट नहीं देना, जो जैसा देखा, सुना वैसा वर्णन करना, दूसरे के धन को मिट्टी के समान समझना, चोरी न करना, अपनी इन्द्रियों पर काबू रखना ही यम है। साधारण भाषा में कहा गया है कि जो साधक को जन्म के हेतु भूत काम्य धर्मों से निवर्तित कर, मोक्ष हेतु भूत निष्काम धर्म में बांध देते हैं उन्हें नियम कहा जाता है इनमें शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान है। दादू के अनुसार "शारीरिक सफाई के साथ—साथ व्यक्ति को संतोषी होना चाहिये गृहस्थ जीवन का तप करके स्वाध्याय आदि से ईश्वर का भजन करें। ईश्वर ध्यान से व्यक्ति की सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं और आत्मोपलब्धि प्राप्त होती है।

दादू की वाणी का सार यम—नियमों में ही दिखाई पड़ता है। ये ही व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ बनाते हैं। इसके द्वारा जीव के कर्म क्षय हो जाते हैं तथा विदहे मुक्ति प्राप्त होती है। फिर इन्होंने पाखण्डों की जोरदार आलोचना करते हुए कहा कि जंगल में जाना, शरीर को हठयोग द्वारा कष्ट देना, मूर्ति—पूजा, जाति—पांति, भस्म लगाना उचित नहीं है, अगर ब्रह्म प्राप्ति करना है तो जीव को घट—घट में ब्रह्म को देखना होगा क्योंकि वह तो सर्वत्र व्याप्त है।

संदर्भ-सूची

1. कृष्ण वल्लभ दवे, संत कवि दादू, पृ. 113
 2. डॉ. बलदेव बंशी, पूर्वोक्त पृ. 42
 3. श्री दादूवाणी, हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 30298, मन को अंग
 4. वही, साखी 35
 5. वही, साखी 48
 6. वही, मन को अंग, साखी 19
- यह मन कागज की गुडी, उडि चढ़ि अकास ।
दादू भीगे प्रेम जल, तब आई रहै हम पास ।।
7. श्री दादूवाणी, हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 6926, गुरुदेव को अंग, साखी 15, संवत् 1755, प्रा.वि.प्र. जोधपुर ।
 8. डॉ. बलदेव वंशी पूर्वोक्त पृ 42
 9. वही, पृष्ठ 43
 10. श्री दादूवाणी हस्तलिखित ग्रन्थ, क्रमांक 225 535, 1653 ई. साधु के अंग, साखी 159
 11. वही, साखी 20
 12. दादूवाणी, पृ. 123
 13. कृष्ण वल्लभ दवे, संतकवि दादू, पृ 134
 14. श्री दादूवाणी, हस्तलिखित ग्रन्थ, क्रमांक 22535, 1653 ई. विरह को अंग, साखी 140
 15. वही, साखी 42
 16. वही, स्मरण के अंग, साखी 29
 17. वही, परचै के अंग, साखी 44
 18. वही, मन के अंग, साखी 10
 19. वही, मन के अंग, साखी 18

डॉ. आदर्श किशोर

सह आचार्य (हिंदी)

राजकीय महाविद्यालय, बाड़मेर